ISSN: 2349-1876 (Print) | ISSN : 2454-1826 (Online)

जीवित मुरदों की बस्ती : मुरदाघर

डॉ. सुषमा सहरावत,

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
कमला नेहरू कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारांश

जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का उपन्यास 'मुरदाघर' मुम्बई की रेल–लाइनों की बसी ये झोपडपट्टियों में रहने वाली वेश्याओं की विडम्बनापूर्ण मार्मिक कथा है, साथ ही वहाँ रहने वाले अन्य लोगों के अभिशप्त जीवन की भी मार्मिक प्रस्तुति है। जो ज़िन्दा होते हुए भी मुरदे के समान है।

जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का उपन्यास मुरदाघर (1974) घिनौनी ज़िन्दगी जीने को अभिशप्त उन विवश स्त्रियों की करूण कथा है जिन्हें समाज में वेश्या कह कर तिरस्कृत किया जाता है। मुम्बई की रेल लाइनों की ढलान पर बसी झोंपड़पट्टियों में रहने वाली ये वेश्याएँ सभ्य समाज की 'कॉल गर्ल्स' अथवा किसी होटल–रेस्तराँ में अपनी जिस्मफरोशी द्वारा ऐय्याशी करने वाली रंडिया नहीं हैं वरन् दो वक़्त की रोटी के लिए अठन्नी–रुपये में अपना शरीर बेच देने को बाध्य औरतें हैं। इनकी कीमत अधिक से अधिक पाँच रुपये ही है, इससे ज़्यादा नहीं। जिस्म बेचना इनके लिए एक विवशता है, स्वेच्छा नहीं। आजीविका के समस्त मार्ग बंद हो जाने पर ही जीवित रहने की इच्छा ने इन्हें इस घिनौने पेशे को अपनाने को मजबूर कर दिया है। इन निम्नवर्गीय वेश्याओं के त्रासद जीवन के साथ ही जुड़ी हैं अंधों, लंगड़ों, कोढ़ियों, भिखारियों, हिजड़ों, मजदूरों, गंदे आवारा छोकरों और छोटे–मोटे चोर–उचक्कों की त्रासपूर्ण दुनिया। वस्तुतः ''इस उपन्यास में शायद पहली बार महानगर के उस जीवन को आधार बनाया गया है जो सड़ाँध, धूल और कीच में लिपटा हुआ है। यह दावा सही है कि फुटपाथ पर लेटे इन लोगों की ज़िन्दगी उठ नहीं सकती और इसे भोगने वाला और देखने वाला सह रहा है।''[1]

फुटपाथ और झोंपड़पट्टियों में रहने वाले आवारा छोकरे कुत्तों और कौवों के साथ होटल के पिछवाड़े फेंकी जाने वाली सड़ी–गली जूठन को खाते हैं, जिस पर ढेरों मक्खियाँ मिनभिनाती रहती हैं। साथ ही दरगाहों पर कोढ़ियों के लिए बँटने वाली खैरात खाते हैं, राह चलते अपाहिज को पत्थर मारकर खुश होते हैं, कुत्तों को पानी में डुबाकर मारने में आनंद अनुभव करते हैं, दो–दो बीड़ियों का जुआ खेलते हैं और खेलते–खेलते बीच–बीच में भीख भी माँगते रहते हैं। गरीबी और भूसा का कितना करुण चित्रण है – ''अचानक खुल जाता है दरवाज़ा होटल के पीछे का। निकल आया छोकरा। हाथों में कनस्तर। भरा है लबालब। सब–कुछ एक में। ... चावल ... रोटी ... पाव ... हड्डी ... दाल मच्छी ... शोरबा ... आज का अचानक ... कल का। सड़ा हुआ ... बदबू। सब चौक उठते हैं अचानक ... दौड़ने लगते हैं। .. . एक मच्छी ... आधी खायी हुई ... अचानक दिख

जाती है। ... दौड़ पड़ते हैं सब। तेरी माँ की ... हट रे ... मैं ढूँढ के निकाला। हाथ नई लगाना गाँडू। ऐसा मारेंगा ...। ... लिबलिबा मिकदार ... खत्म हो जाएगा सारा। राजू ... मम्मद ... गनेश ... गोपू ... अन्ना ... कुछ नहीं सूझता अब। पेट में जलती आग बुझती नहीं ... बढ़ती जाती है।''[2] पेट की खातिर ही एक चार साल की लड़की गले में डली रस्सी से बंधा हुआ बहुत बड़ा–सा पत्थर उठाने को मजबूर हैं, लेकिन ''नहीं उठता पत्थर। कभी नहीं उठेगा। हमेशा लटका रहेगा गर्दन के पास। गालियाँ दे रहा है बाप ... पेट के वास्ते। तालियाँ बजा रही है भीड़ ... हँस रही है। रो रही है छोटी लड़की कब से कोशिश कर रही है ... नहीं उठता पत्थर।''[3] वेश्याओं का धंधा मारने वाले हिजड़े भी इन झोंपड़पट्टियों में रहते हैं जो रात के अंधेरे में नशे में धुत्त मजदूरों को बहकाकर पैसे ऐंठते रहते हैं और धंधेवालियों का धंधा चौपट करते हैं। इनमें लक्ष्मी जैसे हिजड़े भी हैं जो हिजड़ा न होते हुए भी हिजड़ा बनकर रहने को विवश है, ''... मैं हिजड़ा नई। पन काम नई मेरे कू कुछ। पइसा नई। करके में आ गया कमला बिमला के साथ। भीक माँगने से तो येच ठीक ...।''[4] इन्हीं के साथ हैं अंधे, लंगड़े और कोढ़ियों की कतार जो भीख माँगते रहने को बेबस हैं।

लेखक ने वेश्या–जीवन की कटु वास्तविकता का यथार्थ चित्रण किया है। इनके समक्ष यह प्रश्न सदैव मुँह खोले खड़ा रहता है ''कैसे जले चूल्हा?''[5] इसलिए बेमन से शाम होते–होते इन्हें अपने काले–मुरझाये जिस्म को सजाना पड़ता है। पिसी हुई खड़िया ही इन रंडियों के लिए पाऊडर है और बनिये की दुकान से लाया गया गुलाबी रंग ही इनके लिए लिपस्टिक व रूज़ है। सिर जुओं से भरे पड़े हैं। साड़ियों मैली व फटी पुरानी है। नहाने के लिए साबुन तक को तरसती हैं। आधी–आधी बीड़ी आपस में बांटकर पीती हैं। माँगकर शराब पीती हैं और सुबह चाय तक पीने के लिए माथापच्ची करनी पड़ती है। ये स्वयं जानती हैं कि ''अपना ज़िन्दगानी भी कोई ज़िन्दगानी है।''[6] किंतु फिर भी ये पेट की खातिर, ज़िन्दा रहने के लिए भूख और कमजोरी से मैले थके अपने कंकालमात्र जिस्म को सजाती–संवारती हैं और निकल पड़ती हैं अंधेरे में ग्राहकों को पटाने के लिए इन वेश्याओं के ग्राहक भी उन्हीं की तरह निम्नवर्गीय हैं जो मैले–कुचले और बदबूदार रहते हैं। इनमें बजरों और जहाज़ों के कुली, काली रेल के मजदूर, टैक्सी ड्राईवर, नौकर, घर से दूर रह रहा दूधवाला जैसे ग्राहक हैं जिनकी जेब से कभी मात्र अठन्नी निकलती है तो कभी रुपया। घंटो–घंटों कोशिशें करके ये ग्राहकों को पटाती हैं और कभी–कभी स्वयं भी ग्राहकों द्वारा ठगी जाती हैं, पचास पइसा ले के रंडीबाजी करने निकलता! सरम नई आता तेरे कू ...।'' या फिर ''पइसा नई ... तो अपनी माँ समज के आया मेरे पास ...। ... अरे मेरा पइसा! मार लिया रे! रंडी का पइसा ... ।''[7] ग्राहकों को लेकर ये वेश्याएँ आपस में मार–पिटाई भी करती हैं क्योंकि एक वेश्या द्वारा अधिक ग्राहक पटा लेने पर अन्य वेश्याओं का चूल्हा बंद हो जाएगा। मैना और बशीरन का झगड़ा इसीलिए होता है – ''सारा चंदा चौपट कर दिया। आगे–आगे नाचती है हमेसा। ... बाबू डिरेबर मेरे कने आता था तो तू कायकू मरती थी बीच में? बोल छिनाल! जभी शेरू मेरे कू पाँच रुपिया देता था ... तू कायकू तयार हुई दो रुपिये में?''[8] इस तरह ये रंडिया एक–एक, दो–दो रुपये के लिए मर–मिटने को तैयार हैं। धंधे की खातिर ये अपने शरीर की भी बिल्कुल परवाह नहीं करती। चाहे सारे जिस्म का कचरा ही क्यों न हो जाए लेकिन ग्राहक नहीं छूटना चाहिए क्योंकि यही तो उनकी रोज़ी–रोटी है। हालत यह है कि ''... झोंपड़े के अंदर ... फटी हुई दरी का बिस्तर . .. जिस पर प्लास्टिक का कपड़ा। कपड़े पर ... चलो एक के बाद दूसरा। ... थक गयी है पारवती। चला गया तीसरा आदमी। चौथा! ... जरा ठैर! एक नौटाक पिला दे मेरे कू ...पीछू

कर। सारा जिसम टूट रया है।''[9] इस प्रकार किसी तरह भी जीने की इच्छा लिए ये वेश्याएँ तिल–तिल कर मर रही हैं। एक स्त्री के लिए मातृत्व प्राप्त करना अत्यंत सौभाग्य की बात होती है किंतु इन वेश्याओं के जीवन में यह सौभाग्य दुर्भाग्य का संकेत लेकर आता है। कारण यह है कि बच्चा होने से इनका धंधा चौपट हो जाता है। वेश्या बेचारी धंधा करेगी या बच्चा संभालेगी। कैसी विडम्बना है कि ''झोंपड़ों और फुटपाथों की इस दुनिया में रोशनी भी आती है, तो अंधेरा लेकर। बच्चे के जन्म पर यहाँ खुशी नहीं मातम मनाया जाता है, क्योंकि नवजात शिशु उनके व्यवसाय के कपाटों को क्रूरता से बंद कर देता है। मरियम को पुत्र–प्राप्ति का आनंद नहीं, क्योंकि पेट की आग ने मातृत्व की ममता के समुद्र को सोख लिया है।''[10] सफेद रोशनी वाले शरीफ लोगों को इन झोंपड़पट्टियों की 'गंदी दुनिया' से नफ़रत है। अतः इनके रहने के ठौर–ठिकानों का कोई उचित प्रबंध किए बिना ही पुलिस इनके झोंपड़े तोड़ देती है। वहाँ से उखड़कर जहाँ कहीं भी ये गरीब लोग अपने झोंपड़े बनाते हैं वहीं कहीं पास ही में सफेद रोशनी वालों की 'उजली दुनिया' बसी रहती है जिनकी शिकायत पर फिर इनके झोंपड़े तोड़ दिए जाते हैं। इस तरह यह क्रम चलता रहता है और ''फुटपाथ पर रहने वालों को छाया की तलाश'' लगातार जारी रहती है। कोई इनकी बात सुनने वाला नहीं है। पुलिस भी अपने फायदे के लिए ही छापा मारती है और रंडियों को भोगकर इन्हें 'होम' के माध्यम से बेच देती है। चमेली की आप–बीती है कि ''इधर इंगले नाम का साब होता। साला रात कू किया मेरे कू ... फिर ये मोटे डंडे से मारा। बोला कि कोई कू बोलेंगी तो तेरा जान लें डालूँगा। ... पीछू होम में डाल दिये ... पीछू एक भाई आया मेरा। साब उसे पाँच सौ रुपिया लिया और मेरे कू भेज दिया साथ में। ... ताड़देव में एक मुस्लिम घरवाली होती। ये मेरा भाई उधरिच रखा मेरे कू। उधरिच धंदा करती मैं।''[11] छापे में यदि पुलिस को बशीरन जैसी बुढाती वेश्याएँ हाथ लगती हैं तो वह उन्हें सिर्फ इसीलिए छोड़ देती है क्योंकि अब वह 'साब' के सामने 'पेश' करने लायक नहीं रह गई हैं। किसी को भी वेश्याओं का भाई, पिता अथवा पति बनाकर उन्हें उनके हाथ बेच दिया जाता है। इस तरह पुलिस और 'होम' भी वेश्याओं के नारकीय जीवन को सुधारने के स्थान उन्हें और अधिक इस दलदल में धकेलते चले जाते हैं। समाज यह भूल जाता है कि ''नारी केवल मांसपिण्ड की संज्ञा नहीं है। आदिम काल से आज तक विकास पथ पर पुरुष का साथ देकर उसकी यात्रा को सरस बनाकर, उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भरकर, मानवी ने जिस व्यक्तित्व, चेतना और हृदय का विकास किया है, उसी का पर्याय नारी है।''[12] प्रश्न उठता है कि यदि वेश्यावृत्ति पर लगाम लगाने के लिए कानूनों की दुहाई दी जाती है तो फिर वह कानून हैं कहाँ? जब सुधार–गृह और तथाकथित जन–सेवी पुलिस स्वयं ही वेश्यावृत्ति को समाप्त करने के प्रयास करने के स्थान पर इसके सूत्रधार बन गए हैं तब कानून कहाँ रह जाता है? इससे अधिक त्रासद स्थिति और क्या होगी कि नारी को इस अभिशप्त जीवन से बाहर निकालने के स्थान पर अपनी–अपनी स्वार्थ–सिद्धि हेतु उन्हें इसी नारकीय जीवन में जीने के लिए विवश कर दिया जाता है।

असल में, मुम्बई की झोंपड़पट्टियों में रहने वाले ये सभी लोग भी इस तेज बदबूदार और सड़ांध भरी दुनिया से निकलना चाहते हैं। पोपट, जब्बार, मैना, रोज़ी, हसीना सभी अच्छा और साफ–सुथरा जीवन जीने की इच्छा रखते हैं किंतु इन्हें कोई मौका नहीं देता। ये वेश्याएँ भी चाहती हैं कि इनका पति हो, घर हो क्योंकि ''मरद होने से कि नई ... भोत अच्छा होता। अपने कू कुछ फिकर नई किधर से आएंगा ... क्या होंगा.. ये रोज़ का घिनघिन नई। एक ठिकाना पर बैठ के रोटी खाने का और काम करने का ...

दुसरा क्या मँगता ... जो अउरत लोक कू मरद होता ... वो भोत नसीब वाला होता ...।''[13] किंतु हालात इन्हें इस 'गंदी दुनिया की ओर ले आते हैं जहाँ से फिर ये चाहकर भी नहीं निकल सकती। इसके लिए वे परिस्थितियाँ भी बहुत हद तक ज़िम्मेवार होती हैं जो इन औरतों को इस ग़लीज़ धंधे की ओर धकेल देती हैं। अतः लेखक ने वेश्याओं के दुखद जीवन के यथार्थ चित्रण के साथ ही उन कारणों एवं परिस्थितियों को भी उजागर किया है जो इन्हें 'रंडी' बनने पर विवश कर देती हैं। अपनी इच्छा से ये औरतें वेश्या नहीं बनती हैं बल्कि जबरन बना दी जाती हैं या फिर इन्हें मजबूरन वेश्या बनना पड़ता है। मैना की त्रासदी यह है कि ''मैना को परिस्थितियों ने वेश्या बना दिया। वह तो चाहती थी कि उसका पति कमाये और वह साफ–सुथरा जीवन व्यतीत करे, लेकिन हुआ इसके ठीक उल्टा। वह धंधा करती है और उसका पति पोपट खाता है। इससे वह अपने पति से झगड़ा करती रहती है तथा अपने जीवन से कुंठित होकर उसे गालियाँ देती रहती है।''[14] असल में, मैना को फुटपाथ से उठाकर पोपट ने सहारा दिया था और भरोसा दिलाया था कि उसे बहुत अच्छी तरह रखेगा किंतु पोपट ने सपनों की दुनिया में रहने के अलावा कुछ नहीं किया और अब बेचारी मैना अपने तथा बेटे राजू का पेट भरने के लिए वेश्यावृत्ति करने को मजबूर है। इसीलिए मैना पोपट को गालियाँ देती रहती है – ''इसका कभी भला नई होंगा। मरेंगा तो पानी भी नईं मिलेंगा। अइसा मरद से बेमरद ठीक ...।''[15] मैना इस ग़लीज़ ज़िंदगी से तंग आकर शिवड़ी भी भाग जाती है किंतु पोपट उसे बहलाकर फिर उसी 'गंदी दुनिया' में ले आता है। मैना को पोपट ने धोखा दिया ''क्या बोला था तू . .. धंदा करेंगा और पेट भरेंगा मेरा। अब धंदा करती मैं और पेट भरती तेरा ...।''[16] मैना जो थोड़ा–बहुत दो–चार रुपये कमाती है उसे भी पोपट अपने 'आखिरी चानस' के वास्ते छीनकर ले जाता है। अपना शरीर बेच बेचकर कमाये गए पैसों को निठल्ले पति द्वारा सट्टेबाजी में उड़ाता देखकर मैना पीड़ा से भर उठती है, ''सुबू से चुल्हा नईं जला। शाम से कुतिया का माफ़क रौंड मारती। एक घराक नई मिलता। ... क्या हाल कर दिया मेरा! आज इसके नीचू तो कल उसके। फिर भी भूकी मरती। उधर छोकरा हॉटेल का सड़ेला–पड़ेला खाता।''[17]

पोपट जैसे स्वप्नजीवी लोग भी इन झोंपड़पट्टियों में रहते हैं जो हमेशा कल्पना की दुनिया में रहते हैं और हाजी सेठ की तरह बनना चाहते हैं। छोटे–मोटे काम करना। इन्हें पसंद नहीं और हमेशा अपने 'टैम' की प्रतीक्षा में रहते हैं। कितनी विडम्बनात्मक स्थिति है कि ''पोपट अपनी पत्नी मैना को अच्छी खोली में रखना चाहता है। मगर इस स्वप्न की प्राप्ति वह मैना की देह–तोड़ कमाई से करता है।''[18] पोपट को भरोसा है कि एक दिन उसका सपना पूरा होगा और उसका 'टैम' ज़रूर आएगा। तब वह मैना को यह धंदा नहीं करने देगा और चाली में खोली लेकर देगा किंतु पोपट का वह 'टैम' नहीं आता और तस्करी का माल उड़ाकर 'आखिरी चानस' लेते समय वह रेल से कटकर मर जाता है, ''पानी मँगता था बार–बार कोई नई दिया। कोन देंगा! मर गया तो अपना ऊपर आएंगा। ... आधा कलाक (घंटा) पड़ा होता इधर पीछू मर गया।''[19] मनुष्यता के लिए यह अत्यंत त्रासद स्थिति है कि लोग अब इतने संवेदनहीन हो गए हैं कि पुलिस कचहरी के भय से मरते हुए इन्सान को पानी तक भी नहीं पिलाते और उसे प्यासा तड़प–तड़पकर मरते हुए देखते रहते हैं। इस तरह पोपट के सपनों का अन्त हो जाता है तथा बेचारी मैना और राजू उसी 'ग़लीज़ ज़िन्दगी' में रह जाते हैं। मैना के पहुँचने तक पोपट की लाश को म्युनिसिपैलीटी वाले मुरदाघर ले जाते हैं। गरीब मैना के पास पोपट के कफन तक के पैसे भी नहीं हैं, मात्र अस्पताल जाकर पोपट के अन्तिम दर्शन करने लायक ही पैसे हैं और वह भी तब जबकि ''... लौट के जल्दी से घराक पकड़ना

पड़ेगा। तब मिलेंगा खाना।''[20] अतः पैसों के अभाव में मैना पोपट की लाश को मुरदाघर में ही छोड़ देने को विवश है। वहाँ पोपट की लाश का यही होगा कि ''वो छोकरा लोक जो इधर पढ़ने के वास्ते आता ... उनका काम में आ जाएंगा। हड्डी का भाव भोत जास्ती है आजकल। पूरा जिसम का ढाँचा का भाव तीन सौ रुपिया चलता है ...।''[21] कितनी त्रासद स्थिति है कि जीते–जी जिन इन्सानों की कीमत नगण्य है, मरने के बाद उनके कंकाल का मूल्य तीन सौ रुपिये है। इस तरह पोपट की लाश को एक मुरदाघर में छोड़कर मैना और बशीरन लौट पड़ती हैं दूसरे मुरदाघर में जहाँ अनेक जीवित मुरदे रहते हैं।

'नयी छोकरी' की स्थिति मैना की ही तरह है जो प्यार में धोखा खाकर यहाँ फँस गई है। वह सम्पन्न परिवार से सम्बन्ध रखती है किंतु उसके जीवन का त्रासद मोड़ तब शुरू हो जाता है जब वह किसी के प्यार के चक्कर में पड़कर घर से भागकर मुम्बई आ जाती है और फिर, ''मुहब्बत झूठी निकली। किसी से ले लिये कुछ रुपये और छोड़ कर चला गया मुहब्बत करनेवाला।''[22] छोकरी रंडी बनना नहीं चाहती किंतु अपने पिता व भाई के डर से वापिस अपने घर भी नहीं जाना चाहती। मैना को छोकरी का भविष्य अपना वर्तमान लगता है क्योंकि छोकरी का अतीत मैना का भी अतीत रहा है। इसीलिए मैना उसे इस 'गंदी दुनिया' की हकीकत समझाती है कि ''मेरा तेरा जइसा इंसान कू तो इधर भांडी घासने कू भी नई मिलता। समझी क्या? मिलेंगा भी तो लोक अपने से येच काम करवाने वाला है अखेर में मैं सब करके देख ली। सादी भी बनाई ... तो भी वो का वोच ...।''[23] किंतु छोकरी अपने घर का पता नहीं बताती। इस पर उसे 'होम' में भेज दिया जाता है और होम की घिनौनी असलियत के कारण उसका वेश्या बन जाना तय है।

रोज़ी की कहानी भी अत्यंत दुखद है। रोज़ी चाहती है कि उसका भी कोई पति हो जिसके साथ वह आराम की ज़िन्दगी बसर कर सके किंतु ऐसा नहीं हो पाता। रोज़ी की ज़िन्दगी में एक के बाद एक अनेक मर्द आते हैं लेकिन कोई उससे शादी नहीं करता ''पहला चला गया छोड़ कर ... दूसरा आया। शादी नहीं 'बनाया'। थोड़े दिन का साथ ... निकाल दिया रोज़ी को। फिर तीसरा ... फिर चौथा। फिर जिसने खिला दिया खाना ... हो गया रोज़ी का मरद। हर हफ्ते के बाद हर रात ... नया मरद। मगर हारी नहीं रोज़ी। जारी रही मरद की तलाश।''[24] किसी ने रोज़ी को बताया था कि यदि एक बार किसी के साथ में फोटो खिंचवा लेगी तो वह तेरा मरद हो जाएगा और फिर उसे तुझे ज़िन्दगी भर 'गुज़राना' देना पड़ेगा। आखिरकार रोज़ी घाटी के छोकरे चंद के साथ किसी तरह फोटो खिंचवा ही लेती है किंतु इसके बावजूद भी चंदू उसे छोड़कर चला जाता है। पिछले एक साल से रोज़ी को कोढ़ हो गया था और उसके हाथों व पैरों की उंगलियां धीरे–धीरे गलती जा रही थी लेकिन फिर भी रोज़ी मैली गुदड़ियों में छिपाकर रखे डिब्बे में 'तस्वीर को संभालकर रखे हुए थी, इस व्यर्थ प्रतीक्षा में कि शायद चंदू आएगा और रोज़ी को अपनाएगा। मगर वह तस्वीरवाला जाने कहाँ चला गया था। रोज़ी को भीख माँगना अच्छा नहीं लगता लेकिन अब पेट की खातिर उसे यह करना ही पड़ता है क्योंकि शरीर तो अब उसका 'धंधे' के लायक रह नहीं गया था। अतः भूख से तड़पती रोज़ी के पास कोढ़ से गलती देह लिए भीख माँगने के अलावा कोई दूसरा रास्ता बचा ही नहीं है। इस तरह रोज़ी के अच्छा जीवन जीने के समस्त प्रयास व्यर्थ जाते हैं।

जब्बार और हसीना का प्रसंग भी मार्मिक है। साँवली हसीना को जब्बार ने उसकी माँ के हाथों बिकने से बचाया था और सुनहरी सपने दिखाए थे कि उससे शादी करके वह सुखी रहेगी लेकिन मेहनत–मजदूरी करने के स्थान पर जब्बार छोटी–मोटी चोरियाँ करता है। शादी के बाद अच्छी ज़िन्दगी जीने की चाह में ''जास्ती चोरी

किया। ... और जबसे हो गया ये अमजद ... तो पूछो मत। कितना चोरी किया ... कुछ हिसाबच नईं। और ये साला लोक ... कर दिया मेरे कू तड़ीपार।''[25] किंतु तड़ीपार होकर जब्बार अधिक दिनों तक अपनी बीवी और बच्चों से अलग नहीं रह पाता क्योंकि उसे डर है कि कहीं हसीना भी रंडी न बन जाए। इसीलिए वह वापिस आकर उन्हें बिना कहीं ठौर–ठिकाना हुए भी अपने साथ ले जाना चाहता है किंतु किस्मत को जब्बार की खुशी मंजूर नहीं। स्टेशन पर ही उसे पकड़ लिया जाता है और इस तरह शुरू होने से पहले ही उनकी नयी ज़िन्दगी अचानक गिर पड़ी पटरियों पर। कितनी रेलगाडियाँ गुज़र गयी ऊपर! ... सब कुछ खत्म हो गया।''[26] इस तरह जिस हसीना को जब्बर ने बिकने से बचाया था और जिसे वह रंडी बनते नहीं देखना चाहता था, वही हसीना अब अपना और अपने बेटे का पेट भरने के लिए वेश्यावृत्ति की ओर चली जाने को विवश है। जब्बार पर पुलिस का रिमांड रोंगड़े खड़े कर देने वाला है। एक छोटी–सी चोरी के लिए इतनी भयंकर यातनाएँ देना पुलिस की पाशविक प्रवृत्ति को दर्शाती है। नत्थू के शब्दों में पुलिस के अत्याचार की वास्तविकता यह है – ''किधर भी चोरी करना ... पन इस्मगलर ... दारूवाला ... रंडीवाला ... इधर कभी भूल के भी नई जाने का। नई तो पोलिस जान ले डालेंगा मार–मार के। कब्भी नई छोडेंगा। कायकू? ... सारा पोलिस खाता इधर सेच चलता।''[27] किस्तय्या जैसे नाजायज़ दारू का धंधा करने वालों के साथ हवलदार बैठकर दारू पीते हैं, 'साब' घूस लेते हैं और उनका धंधा बंद नहीं करते हैं। निम्नवर्गीय वेश्याओं को तो पकड़कर लॉकअप में बंद कर देते हैं परंतु रंडी का धंधा चलाने वाले होटल मालिकों और 'घरवालियों को नहीं पकड़ते। वेश्याओं को जिस हवालात में रखा जाता है, उसकी हालत अत्यंत खस्ता है। स्नानघर और पाखाना एक हो गये हैं। सब कुछ तैर रहा हैं लेकिन कोई कुछ करता। वेश्याएँ उसी गंदगी और कीड़े–मकोड़ों से भरी हवालात में पड़ी रहती हैं। चमेली को हैजा हो जाता है, दस्त लग जाते हैं लेकिन कारकून कुछ नहीं करता। जब चमेली मरणासन्न हो जाती है तो इस डर से कि कहीं यह हवालात में ना मर जाए, कारकून उसे तब अस्पताल भिजवा देता है जब उसका मरना लगभग निश्चित ही है। अतः वेश्याओं का कहना ठीक है कि ''ये लोक इनसान नई ... जिनावर हैं। अपना चैन आराम मालम! दुसरे का कुछ नईं।''[28] हवालात में भत्तेवाला रिश्वत लेकर वेश्याओं का काम करता है – ''तेरा कल का दो चपाती जास्ती है। एक कारड का गया। एक चपाती उधार देता आज मैं ... भला क्या?''[29] वेश्याओं को यहाँ भेड़–बकरियों की तरह हाँका जाता है। बोझ बन चुकी ज़िन्दगी को इन्हें ढोना ही है, यही इनकी नियति है। इस बेमानी ज़िन्दगी से इन्हें निज़ात नहीं। बशीरन जैसी बुढ़ापे की ओर अग्रसर वेश्याएँ अलग ही चिंतित रहती हैं। उन्हें डर है कि अब उनका गुज़ारा कैसे होगा क्योंकि ''दो साल के अंदर वो टैस आ जाएगा मेरा ... कि हवलदार लोग पकड़ेगाच नई मेरे कू । इधर रहके महीना बीस दिन जो चैन से खाने कू मिलता है बैठके ... वो भी नई मिलेंगा। तब क्या होंगा मेरा?''[30] अपने खून की आखिरी बूँद तक निचोड देने पर भी इन वेश्याओं का ना ही वर्तमान सुखद बन पाता है और ना ही ये अपने भविष्य के प्रति निश्चित हो पाती हैं। ग़लीज़ वर्तमान से भी अधिक घिनौने भविष्य की आशंका से ये त्रस्त रहती हैं।

इस प्रकार मृत्यु को किसी भी कीमत पर नकार कर जीने की यह ऐसी लालसा है जिसने इन्सानों को कीड़े–मकोड़ों से भी बदतर ज़िन्दगी जीने को मजबूर कर दिया है। वस्तुतः '' 'मुरदाघर' का पूरा परिदृश्य इस तथ्य को सिद्ध करता है कि पूँजी आधारित पतनशील समाज लोकतंत्र का उपयोग हमेशा शोषण के पक्ष में करता है। इस प्रक्रिया के चलते वह स्त्री को पण्य–वस्तु बना देता है और उसके राग–विराग,

सौंदर्य–बोध और कल्याणेच्छा को एक व्यापारिक विज्ञापन का दर्ज़ा दे देता है। ... स्त्री के पक्ष वाले कानूनों के आधुनिक मुखौटों के भीतर समाज का वह दकियानूस चेहरा छिपा रहता है जो स्त्री की आज़ादी पर व्यंग्य करता है।''[31] लेखक ने वेश्यावृत्ति का यथार्थपरक एवं हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत किया है। मुम्बई ही नहीं अन्य महानगरों की वेश्याएँ भी इन्हीं से मिलते–जुलते कारणों – किसी के प्यार में फँसकर घर से भागना, बेच दिया जाना, गरीबी अथवा धोखा खाना इत्यादि – की वजह से वेश्यावृत्ति की ओर धकेल दी जाती है। फिर चाहते हुए भी वे इस गंदे धंधे से निकल नहीं पातीं। सच ही वेश्याओं की यह दुनिया एक ''बजार है ... भोत बड़ा बजार। बजार बोले तो ... एक भट्ठी है। भोत बड़ा भट्ठी। और दूर–दूर से ... गाव–गाव से छोकरी लोक कू ला–ला के ये बजार का भट्ठी में डालता है ये लोक। सीधा भोला छोकरी लोक ... भोला नईं होएंगा तो गरीब होएंगा। ... एक बार गिरा ये भट्ठी में ... तो जलनाच मँगता। कोई रस्ता नई। ये लोक तुमकू निकलनेच नईं देंगा।''[32] अतः वेश्यावृत्ति की इस दलदल में धँसने को मजबूर मुम्बई की इन वेश्याओं का जीवन अत्यंत विडम्बनापूर्ण एवं त्रासद है। इनके लिए ''जीना ... वइसा मरना। क्या फरक...?''[33] ज़िन्दगी में जब जीने और मरने का फर्क ही न रहे तो इन्सान एक चलती–फिरती लाश के अतिरिक्त कुछ और नहीं रह जाता, एक जीवित मुरदा बनकर रह जाता है। झोंपड़पट्टियों में रहने वाले ये लोग भी जीवित मुरदे बनकर रह गए हैं जहाँ वेश्याओं के साथ ही आवारा छोकरे, ''फेरीवाले और फुटपाथ वाले। चीख़ने वाले और चुप हो जाने वाले। अंधे और कोढ़ी। लँगड़े और अपाहिज। ज़िन्दा रहकर मर जाने वाले''[34] रह रहे हैं। इस तरह मुम्बई की रेल–लाइनों की ढलान पर बसी ये झोपडपट्टियाँ 'मुरदाघर' के समान हैं जिनमें ज़िन्दा मुरदे रहते हैं। 'ज़िन्दा मुरदे' इसलिए क्योंकि ना ही तो इनके जीवन में 'जीने' जैसा कुछ सार्थक है और ना ही ये निरे मुरदे की भाँति निरर्थक हैं। इसीलिए ये 'ज़िन्दा मुरदे' बनकर रह गए हैं। 'मुरदाघर' इन्हीं जीवित मुरदों की कथा है।

संदर्भ

1. हिन्दी उपन्यास : एक नयी दृष्टि, इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1975, पृ. 118.
2. मुरदाघर, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1974, पृ. 33–34.
3. वही, पृ. 50.
4. वही, पृ. 160.
5. वही, पृ. 8.
6. वही, पृ. 62.
7. वही, 152.
8. वही, 12.
9. वही, पृ. 120.
10. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास, डॉ. पारूकान्त देसाई, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1984, पृ. 165.
11. मुरदाघर, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1974, पृ. 74–75.
12. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, 1995, पृ. 145 146.
13. मुरदाघर, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1974, पृ. 65.

14. हिन्दी उपन्यास – आठवाँ दशक : असामान्य चरित्र, डॉ. सुमित्रा यादव, रचना प्रकाशन, जयपुर, संस्करण–1998, पृ. 95.

15. मुरदाघर, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1974, पृ. 15.

16. वही पृ. 20.

17. वहीं पृ. 21.

18. उपन्यास की शर्त, जगदीश नारायण श्रीवास्तव, किताबघर, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृ. 120.

19. मुरदाघर, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1974, पृ. 197.

20. वही, 199.

21. वही, 203.

22. वही, पृ. 728.

23. वही, पृ. 73.

24. वही, 15.

25. वही, पृ. 63–64.

26. वही, पृ. 173.

27. वही, पृ. 179.

28. वही, पृ. 106.

29. वही – 97.

30. वही, पृ. 111.

31. उपन्यास की शर्त, जगदीश नारायण श्रीवास्तव, किताबघर, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृ. 122.

32. मुरदाघर, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1974, पृ. 107.

33. वही, पृ. 100.

34. वही, पृ. 129.

Copyright © 2017 *Dr. Sushma Sehrawat*. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.